7
भारत में महिला शिक्षा

म.वि. कुबड़े*

भारतीय रुढ़िवादी समाज में आज भी नारियों की स्थिति में कोई ज़्यादा बदलाव नहीं आया है। आज भी खापपंचायतें तय करती हैं कि लड़कियों का विवाह किस गोत्र में होना चाहिए। असहज कर देने वाली इस प्रकार की वृत्तियों पर शिक्षा के माध्यम से ही लगाम लगाया जा सकता है। प्रस्तुत आलेख में नारियों की स्थिति को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने के साथ ही शिक्षा सामाजिक बदलाव में कैसे महती भूमिका अदा कर सकती है इस पर भी विचार किया गया है।

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी धुरी है, नारी। उसकी दुर्बलता अथवा सशक्तता पर पूरे देश की अस्मिता निर्भर करती है। वर्तमान नारी शिक्षा पर विचार करते हुए कुछ ऐसे तथ्यों का उल्लेख अनिवार्य, है जिनकी भूमिका नारी की वर्तमान स्थिति के निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण रही है। मध्ययुगीन स्त्री एक ऐसी निरुपाय स्थिति में जी रही थी, जब उसकी बौद्धिक क्षमता के उन्मेष की रंचमात्र भी संभावना नहीं थी। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में रूढ़िग्रस्त स्त्री मानसिकता को ज्ञान के नए आलोक का संस्पर्श मिला। स्त्री शिक्षा को घोर कलंक मानते हुए उसके साथ वैधव्य की आशंकाओं का तर्क जोड़ने वाले पुरातनपंथी निर्मम युग का अंत हुआ। पुनर्जागरण की उस सदी में स्त्री शिक्षा और उसके व्यक्तिगत विकास के सवाल को एक आवश्यक संदर्भ का रूप देते हुए नारी की बौद्धिक अस्मिता को पहली बार एक उन्मुक्त स्वीकृति मिली। 1961 ईस्वी में साधारण आय वाले समाजसेवी पुरुष धोंडो केशव कर्वे ने प्रथम महिला विश्वविद्यालय की स्थापना की। मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाकर उसकी गरिमा बढ़ाने वाला यह पहला विश्वविद्यालय हुआ। महर्षि कर्वे ने स्त्री शिक्षा प्रणाली में गृहविज्ञान को विशेष महत्त्व दिया था। यह उनकी दूरदर्शिता और परिपक्व विचारशीलता का परिणाम था।

राजा राममोहन राय के सामाजिक सुधार का मुख्य केंद्र भी नारी समस्याएँ ही थीं। नारी शिक्षा, विधवा विवाह, अंतर्जातीय विवाह को व्यावहारिक रूप देने का पहला प्रयास 1882 ई. में 'ब्राह्मण मैरेज एक्ट' बनाकर किया गया। दयानंद सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज के सिद्धांतों में नारियों को वैदिक युग की तरह शिक्षा का अधिकार दिया गया है। राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस,

* राज्य संसाधन केंद्र, इंदौर (म.प्र.) त्रैमासिक पत्रिका 'जन साक्षरता' (जून 2004) से साभार

विवेकानंद, महात्मा गांधी आदि ने नारियों की मर्यादा की रक्षा करते हुए उनके प्रति सहज मानवीय दृष्टिकोण अपनाया। शताब्दियों के कुसंस्कारों से मुक्त होकर आत्मविकास के लिए सजग नारी का एक नया अस्तित्व इस युग में सामने आया।

वर्तमान भारतीय स्त्री शिक्षा के विविध संदर्भों की ओर दृष्टि डालें तो चिकित्सा, प्रशासन, उद्योग, कला, साहित्य, संस्कृति, शिक्षा जगत् आदि प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री का पूरा-पूरा सहयोग दिखाई पड़ता है। नारी शारीरिक अथवा बौद्धिक क्षमता की दृष्टि से पुरुष से किसी भी अर्थ में कम नहीं हैं, इस सत्य की पहचान आज के परिवेश में पूरी तरह उभरकर सामने आती है। फिर भी एक प्रश्न जो बार-बार उद्वेलित करता है, वह यह है कि हमारे समाज में यद्यपि लड़कियों को लक्ष्मी आगमन का पयार्य माना जाता है, किंतु व्यावहारिक धरातल पर सच्चाई यह है कि लड़कियों के जन्म लेते ही उन्हें बोझ समझा जाने लगता है। जहाँ लड़के को अपने भविष्य का आधार मानकर उसका बखूबी पालन पोषण किया जाता है, वहीं दूसरी ओर आज भी कई जगह लड़कियों के जन्म पर शोक मनाया जाता है। माता-पिता को इस बात का ग़म खा जाता है कि बड़ी होने पर उसके लिए लड़का देखना पड़ेगा। लड़का मिल भी जाए तो दान-दहेज की राशि जुटानी पड़ेगी। इसी वित्तीय समस्या से बचने के लिए अभिभावकों को बालविवाह की मदद लेनी पड़ती है। बालविवाहों के कारण न सिर्फ़ हँसता-खेलता बचपन शिक्षा-दीक्षा से दूर हो जाता है, बल्कि शारीरिक संबंधों तक मर्यादित और नारकीय हो जाता है, फिर चाहे छत्तीसगढ़ का पण्ढरिया गाँव हो या राजस्थान का जयपुर ज़िला, चाहे झारखंड के गाँव हों अथवा उत्तरांचल के पहाड़ी क्षेत्र। यह वह त्रासदी है, जो भाग्यविधाता नहीं अपितु स्वयं अभिभावक ही अपनी बच्चियों के लिए रच देते हैं।

देश में प्रत्येक वर्ष कच्ची उम्र में ही प्रसव पीड़ा के दौरान हज़ारों बालिकाएँ दम तोड़ देती हैं। बालिकाओं में 30 फीसदी बालिकाएँ किसी न किसी बलात्कार और यौन उत्पीड़न का शिकार होती हैं। 70 फीसदी किशोरियाँ बालविवाह के बाद गर्भधारण कर लेती हैं। स्थिति इतनी भयावह होती जा रही है कि वर्ष दर वर्ष अल्पवयस्क किशोरियों की प्रसव पीड़ा के दौरान होनेवाली मौतों में कमी नहीं आ रही है। ऐसे में पुलिस और प्रशासन दोनों नाकाम साबित हो रहे हैं। जहाँ तक सामाजिक संस्थाओं की बात है, बहुत प्रयास करने के पश्चात् भी ग्रामीणों का सहयोग उन्हें नहीं मिल पाता। जहाँ तक पंचायत प्रतिनिधियों की बात है, वे लोग स्वयं बालविवाहों में सम्मिलित होकर इसे और बढ़ावा दे रहे हैं। नारी गर्भधारण की उम्र 18 से 20 वर्ष के बाद की होती है। छोटी उम्र में माँ बनने पर जान जाने की संभावना 80 फीसदी रहती है। यदि यह ज्ञान लड़कियों को दे दिया जाए तो कम-से-कम अपनी जान गँवाने के डर से ही सही, वे बालविवाह से मना कर देंगी।

बिहार, राजस्थान, उत्तरांचल, उत्तर प्रदेश और झारखंड के गाँव अशिक्षा के अंधकार से ग्रसित हैं। इसका खामियाज़ा वहाँ की मासूम

बच्चियों को भी भुगतना पड़ता है। यदि गाँव में जाकर समाजसेवक लोगों को यह समझाने का प्रयास करते हैं कि बेटियों को शिक्षित करो, उनका उचित पालन-पोषण करो और जब उनमें वयस्क होकर माँ बनने की योग्यता विकसित हो जाए, तब विवाह करो, तो ऐसे में उनका यह उत्तर होता है, "क्या करेंगे हम अपनी बेटियों को पढ़ा-लिखाकर? ज़्यादा पढ़-लिख जाएँगी तो बराबर का लड़का नहीं मिलेगा और क्या पता यदि पढ़ाई-लिखाई के चक्कर में लड़की बिगड़ गई और कुछ उल्टा-सीधा कर बैठी तो? नहीं बाबा! नहीं! हम अपनी बेटियों को नहीं पढ़ाएँगे। इससे तो अच्छा है कि वे समय से अपने घर चली जाएँ।"

आज आवश्यकता है, सामाजिक संस्थाओं और प्रशासन के अंदरूनी हस्तक्षेप की, जिससे अनमोल बचपन को बचाया जा सके। साथ ही कानून लागू करनेवालो को भी कानून का पालन करना होगा, तभी सामान्य व्यक्ति कानून से भय खाएगा। बालविवाह उन्मूलन में यह कारगर अस्त्र होगा।

आज भी स्थिति यह है कि भारतीय नारी, घर और बच्चों के दायित्व से कतई मुक्त नही है। इसलिए शिक्षा की वही प्रणाली हमारे यहाँ उपयुक्त हो सकती है, जिसमें घर-परिवार और अंततः समाज के लिए दायित्व का समुचित बोध निहित हो। औसत भारतीय स्त्री का एक बड़ा हिस्सा ऐसा है, जो या तो अपने अधिकारों से पूरी तरह वंचित है या फिर अधिकार प्राप्ति के लिए सतत् संघर्षरत है। ऐसी दशा में हमारा यह कर्त्तव्य बन जाता है कि हम स्त्री संस्कृति के उत्कर्ष के लिए शिक्षा के प्रतिमानों को और भी चुस्त-दुरुस्त करें। शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत स्त्री की दैनन्दिन अपेक्षाओं को, उसके शारीरिक एवं आत्मिक उन्नयन को आधारभूत लक्ष्य मानकर पाठ्यक्रमों का निर्धारण किया जाए ताकि स्त्री शिक्षा को सही मायने में बल मिल सके। छात्राओं के पाठ्यक्रम में जितने भी विषय रखे जाते हैं, उनका चयन स्त्री के व्यावहारिक जीवन के आदर्शों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। आज 21वीं सदी की स्त्री घर-गृहस्थी के छोटे-बड़े दायित्वों से लेकर देश के सर्वांगीण विकास के व्यापक परिवेश में भी पुरुष के समांतर रेखा में खड़ी है।

❑❑❑